जयप्रकाश जी की ''समग्र-क्रांति'' और दीनदयाल जी के ''एकात्म मानव दर्शन'' का एक ही लक्ष्य है - भारतीय सामाजिक जीवन-दृष्टि को पुनर्प्रस्थापित करना।

प.पू. गुरू जी के आशीर्वाद से दीनदयाल शोध संस्थान का जन्म हुआ था। उन्हीं के करकमलों से इसका उद्घाटन हुआ था। उद्घाटन समारोह को पाण्डिचेरी के अरविंद आश्रम की पूज्य माता जी ने अपना शुभाशीर्वाद भेजा था। दीनदयाल शोध संस्थान ''एकात्म मानव दर्शन'' को व्यवहारिक धरातल पर साकार करने के लिए कृतसंकल्पित है।

संस्थान ने इस कार्य को अनेक ग्रामीण अंचलों में प्रयोगात्मक रूप में आजमा कर देखा है। इन प्रयोगों के अनुभवों के निचोड़ को चित्रकूट क्षेत्र में अधिक विकसित किया जा रहा है।

इन अनुभवों ने ''एकात्म मानव दर्शन'' की व्यवहारिकता को रेखांकित किया है।

शुभाकांक्षी -

नाना देशमुख

(नाना देशमुख)

प्रिय युवा बंधुओं और बहनों,

लोकतांत्रिक शासन-प्रणाली से हम अनभिज्ञ नहीं थे। ढाई हजार साल पूर्व भी अपने यहां गणतंत्र के रूप में लोकतांत्रिक शासन-प्रणाली प्रचलित थी।

1947 में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हमें देश के लिए अपने गत अनुभवों के आधार पर शासन-प्रणाली स्वयं निर्मित करनी चाहिए थी। भूतकाल में हम केवल स्वतंत्र ही नहीं थे, अपितु सर्वाधिक सभ्य राष्ट्र के रूप में प्रतिष्ठित थे। मानव मात्र के सुखमय जीवन-निर्माण करने वाली संस्कृति के हम अधिष्ठाता थे। कौटुम्बिक अवधारणा के आधार पर हमारी शासन-व्यवस्था प्रचलित थी। अपनी गतिशील सामाजिक जीवन-दृष्टि के आधार पर स्वतंत्र भारत की शासन-व्यवस्था हम स्वयं निर्माण कर सकते थे।

किन्तु स्वतंत्र हुए भारत के नेतृत्व ने अमानवीय सभ्यता के अधीन सम्पन्न देशों में प्रचलित शासन-व्यवस्था को ''रेडिमेड'' व्यवस्था के नाते अपना लिया। दुर्भाग्य से अपनी प्रतिभा का सदुपयोग करने की बुद्धि समय पर काम नहीं आई।

भारत को डेढ़ सौ साल गुलाम बनाकर उसका सब प्रकार से सतत् शोषण करने वाले अंग्रेजों की शासन-प्रणाली जैसी थी - उसी को हमने अपनाया। उसी से देश और समाज का भविष्य-निर्माण करने की हम अपेक्षा कर रहे हैं।

चतुराई से भारत का विभाजन करने वाले ब्रिटिश कूटनीतिज्ञ लॉर्ड माउंट बैटन को ही हमने स्वयं स्वतंत्र भारत का प्रथम 'गवर्नर जनरल' बनाया। अंग्रेजों की हुकूमत उखाड़ने के लिए फांसी के फंदों पर झूलने वाले युवा देशभक्तों की भावनाओं की यह घोर अवमानना थी।

गत 60 वर्षों में हम संसार में सबसे बड़े लोकतंत्र का डंका पीट रहे हैं। किन्तु क्या लोकतंत्र की तनिक भी भावना हम कार्यान्वित कर पा रहे हैं? लोकतंत्र में समाज के सभी नागरिकों को स्वतंत्रता की अनुभूति होनी चाहिए। तभी नागरिक देश की उन्नति के लिए जुट सकते हैं। उन्हें अपने देश का उज्ज्वल भविष्य-निर्माण करने की चिंता होती है। तभी वह राष्ट्र उन्नति कर सकता है। किन्तु इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया, देश के नागरिक हर बात के लिए शासन की ओर टकटकी लगाए हुए हैं, जैसे गुलामी के काल में होता रहा है। वे स्वयं अपनी और अपने देश की उन्नति का मार्ग अपना नहीं रहे हैं। क्या इसे हम लोकतंत्र मानेंगे? जिसमें देश के नागरिक स्वावलंबी नहीं होंगे, उस देश में स्वाभिमान क्या कभी आ सकेगा? स्वाभिमान स्वावलबन के बिना संभव नहीं है। स्वतंत्र देश का नागरिक स्वयं स्वावलंबी हो, तभी देश की स्वतंत्रता सार्थक है। अन्यथा, स्वतंत्रता और गुलामी में कोई अंतर नहीं रह जाता।